Journal Literary Aesthetics
Volume No: 12, Issue No: 2, Year: 2025 (July-December)
PP: 105-110
ISSN: 2347-8705
Peer Reviewed & Refereed Journal (IF: 5.8)
Journal Website www.literaryjournal.org

डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी के निबंध-साहित्य में संस्कृत परंपरा की पुनर्रचना

अभिषेक कुमार झा

पूर्व शोधार्थी
विश्विद्यालय संस्कृत विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्विद्यालय, दरभंगा

सारांश

संस्कृत साहित्य के आधुनिक परिदृश्य में डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी का रचनाकर्म एक ऐसे सुदृढ़ वैचारिक सेतु का निर्माण करता है, जो प्राचीन ज्ञान-परंपरा और समकालीन विमर्शों को आपस में अत्यंत सहजता से जोड़ता है। विशेष रूप से उनके निबंध-साहित्य में 'परंपरा' मात्र अतीत का अंधानुकरण नहीं है, बल्कि वह एक निरंतर प्रवाहित होने वाली और समय के साथ स्वयं को परिष्कृत करने वाली जीवंत प्रक्रिया है। प्रस्तुत शोध-पत्र डॉ. त्रिपाठी के निबंधों में संस्कृत परंपरा की पुनर्रचना (पुनर्निर्माण और नवीन व्याख्या) का समग्र, सूक्ष्म और विस्तृत मूल्यांकन प्रस्तुत करता है। इस अध्ययन में यह विश्लेषित किया गया है कि किस प्रकार उन्होंने अपने आलोचनात्मक एवं सर्जनात्मक निबंधों के माध्यम से नाट्यशास्त्र, काव्यशास्त्र, स्त्री-विमर्श और सामाजिक यथार्थवाद को नए अर्थ प्रदान किए हैं। उन्होंने संस्कृत निबंध-विधा को रूढ़िवादी स्तुतियों और पौराणिक आख्यानों की संकीर्ण सीमाओं से निकालकर उसे एक अत्यंत तार्किक, विश्लेषणात्मक और आधुनिक युगबोध से संपन्न विधा के रूप में स्थापित किया है। यह आलेख उनके वैचारिक धरातल, भाषा-शिल्प और सांस्कृतिक यथार्थ के प्रतिमानों की विस्तृत मीमांसा करता है।

मुख्य शब्द: डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, संस्कृत निबंध-साहित्य, परंपरा की पुनर्रचना, संस्कृत परंपरा, आधुनिक युगबोध, नाट्यशास्त्र, काव्यशास्त्र, स्त्री-विमर्श, सामाजिक यथार्थवाद, वैचारिक प्रतिमान, भाषा-शिल्प, सांस्कृतिक यथार्थ

1. प्रस्तावना

साहित्यिक विधाओं के इतिहास में 'निबंध' (जिसे प्राचीन संस्कृत में प्रबंध, लेख या चंपू के गद्य-भाग के रूप में भी जाना जाता था) विचारों की सबसे सशक्त, तार्किक और उन्मुक्त अभिव्यक्ति का माध्यम रहा है। संस्कृत के प्राचीन आचार्यों ने गद्य की महत्ता को प्रतिपादित करते हुए अत्यंत स्पष्ट रूप से उद्घोष किया है:

"गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति।"

अर्थात् गद्य ही कवियों की वास्तविक कसौटी है [1]।

आधुनिक संस्कृत साहित्य में निबंध-विधा ने एक अत्यंत लंबी और परिवर्तनकारी यात्रा तय की है। उन्नीसवीं और बीसवीं सदी के प्रारंभिक दौर में जहाँ संस्कृत निबंध मुख्यतः वर्णनात्मक, ऐतिहासिक या धार्मिक विषयों तक सीमित थे, वहीं बीसवीं सदी के उत्तरार्ध में इसमें गंभीर आलोचनात्मक और समकालीन विमर्शों का प्रवेश हुआ [2]। इस परिवर्तनकारी युग के सबसे प्रखर, मेधावी और प्रतिनिधि हस्ताक्षर के रूप में डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी का नाम सर्वोपरि है।

डॉ. त्रिपाठी ने अपने निबंधों के माध्यम से यह सप्रमाण प्रमाणित किया है कि संस्कृत भाषा केवल अतीत के गौरव-गान या देवालयों की भाषा नहीं है, बल्कि यह वर्तमान की जटिलताओं, सामाजिक अंतर्द्वंद्वों और आधुनिक ज्ञान-विज्ञान को अभिव्यक्त करने में पूर्णतः सक्षम है [3]। उनकी निबंध-कला का सबसे महत्वपूर्ण और क्रांतिकारी पक्ष 'परंपरा की पुनर्रचना' है। पुनर्रचना से तात्पर्य किसी पुरानी इमारत को गिराकर नया बनाना नहीं है, बल्कि परंपरा के उन प्रगतिशील तत्वों को रेखांकित करना है

© Copyright @ Authors

ISSN: 2347-8705
Peer Reviewed & Refereed Journal (IF: 5.8)
Journal Website www.literaryjournal.org

जो आज के संदर्भ में प्रासंगिक हैं और उन रूढ़ियों का तार्किक खंडन करना है जो समाज के विकास में बाधक हैं [4]। प्रस्तुत शोध-पत्र का मुख्य उद्देश्य डॉ. त्रिपाठी के विपुल निबंध-साहित्य में अंतर्निहित इसी नव-उन्मेषशालिनी दृष्टि का गहन अन्वेषण करना है, जिसने भारतीय साहित्य-शास्त्र और सांस्कृतिक चिंतन को एक नई दिशा प्रदान की है।

2. निबंध-साहित्य का वैचारिक धरातल और आधुनिकता का बोध

डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी के निबंधों का वैचारिक धरातल अत्यंत विस्तृत और बहुआयामी है। उनके निबंध केवल कोरी भावुकता, शब्दाडंबर या प्राचीन आख्यानों की पुनरावृत्ति पर आधारित नहीं हैं, बल्कि उनके मूल में एक गहरा दार्शनिक और सामाजिक चिंतन विद्यमान है [5]। उन्होंने संस्कृत निबंधों को 'शोध-आलेख' और 'ललित-निबंध', इन दोनों ही रूपों में एक नया उत्कर्ष प्रदान किया।

उनके वैचारिक प्रस्थान-बिंदु को समझने के लिए यह जानना आवश्यक है कि वे 'आधुनिकता' और 'परंपरा' के द्वंद्व को किस रूप में स्वीकार करते हैं। महाकवि कालिदास ने 'मालविकाग्निमित्रम्' में परंपरा और नवीनता के समन्वय का जो महान आदर्श प्रस्तुत किया था, वही डॉ. त्रिपाठी के निबंधों का मूल स्वर है:

"पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम्।

सन्तः परीक्ष्यान्यतरद्भजन्ते मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः॥" (मालविकाग्निमित्रम् 1.2)

अर्थात्, सब कुछ पुराना होने से ही श्रेष्ठ नहीं होता, और न ही नया होने से कोई काव्य निंदनीय होता है। विवेकशील पुरुष परीक्षण करके दोनों में से श्रेष्ठ को अपनाते हैं, जबकि मूर्ख दूसरों के मत के पीछे चलते हैं।

डॉ. त्रिपाठी के निबंधों में आधुनिकता का अर्थ पाश्चात्य संस्कृति का अंधानुकरण नहीं है; अपितु यह अपनी जड़ों से जुड़े रहते हुए वैश्विक ज्ञान को आत्मसात करने की प्रक्रिया है [6]। 'विचार-विमर्श' और अन्य निबंध-संग्रहों में संकलित उनके लेखों से यह स्पष्ट होता है कि वे संस्कृत साहित्य को समाजशास्त्रीय और मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से परखने के हिमायती हैं [7]। जब वे कालिदास, भवभूति या बाणभट्ट पर निबंध लिखते हैं, तो वे केवल उनके अलंकारों या छंदों की गणना नहीं करते, बल्कि उन प्राचीन रचनाकारों की कृतियों में छिपे 'मानवीय संघर्ष', 'प्रकृति-प्रेम' और 'सत्ता के विरुद्ध मौन विद्रोह' को उद्घाटित करते हैं [8]। इसी वैचारिक धरातल के कारण उनके निबंधों में प्राचीन संस्कृत वाङ्मय एक नए और समकालीन रूप में पुनर्रचित होता हुआ प्रतीत होता है।

3. शास्त्रार्थ की परंपरा: 'वाद' और संवाद की नवीन व्याख्या

भारतीय ज्ञान-परंपरा में 'वाद' (शास्त्रार्थ या वैचारिक संवाद) का अत्यंत महत्वपूर्ण और पवित्र स्थान रहा है। प्राचीन न्यायशास्त्र का यह उद्घोष अत्यंत प्रसिद्ध है:

"वादे वादे जायते तत्त्वबोधः।"

अर्थात् निरंतर होने वाले वाद (शास्त्रार्थ) और बौद्धिक संवाद से ही अंतिम सत्य (तत्त्व) का बोध होता है।

डॉ. त्रिपाठी ने अपने निबंधों में इस 'वाद-परंपरा' की अत्यंत तार्किक, लोकतांत्रिक और आधुनिक व्याख्या प्रस्तुत की है [9]। उन्होंने यह स्थापित किया कि प्राचीन भारत में वैचारिक असहमति का सदैव सम्मान किया जाता था और ज्ञान का विकास निरंतर होने वाले संवादों और शास्त्रार्थों के माध्यम से ही संभव हो सका [10]।

अपने निबंधों में डॉ. त्रिपाठी स्पष्ट करते हैं कि आज के युग में जब वैचारिक असहिष्णुता बढ़ रही है, तब हमें संस्कृत की उसी 'वाद-परंपरा' की ओर लौटना होगा जहाँ 'पूर्वपक्ष' (विरोधी विचार) को पूरी गरिमा और सम्मान के साथ सुना जाता था और अकाट्य तर्क के आधार पर ही 'उत्तरपक्ष' (सिद्धांत) स्थापित

© Copyright @ Authors

ISSN: 2347-8705
Peer Reviewed & Refereed Journal (IF: 5.8)
Journal Website www.literaryjournal.org

किया जाता था [11]। उन्होंने अपने निबंध-साहित्य में न्यायशास्त्र और मीमांसा के जटिल सिद्धांतों को आधुनिक 'विमर्श-सिद्धांतों' के समकक्ष रखकर यह सिद्ध किया है कि संवाद की जो वैज्ञानिक प्रविधि आज पश्चिमी अकादमिक जगत में अपनाई जा रही है, उसके बीज भारतीय शास्त्र-परंपरा में पहले से ही विद्यमान थे [12]। इस प्रकार, वे प्राचीन शास्त्रार्थ को केवल अहंकार का विवाद न मानकर, उसे सत्य की खोज का एक लोकतांत्रिक और बौद्धिक माध्यम सिद्ध करते हैं।

4. नाट्यशास्त्र और काव्यशास्त्र विषयक निबंधों में परंपरा का विस्तार

डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी की अकादमिक ख्याति का एक बड़ा आधार नाट्यशास्त्र और काव्यशास्त्र पर किया गया उनका विश्वस्तरीय शोध है। यह शोध उनके निबंधों में अत्यंत प्रांजल और विश्लेषणात्मक रूप में सामने आता है [13]। उन्होंने अपने निबंधों के माध्यम से भरतमुनि के नाट्यशास्त्र को पुस्तकालयों की अलमारियों से निकालकर आधुनिक रंगमंच की जीवंतता के साथ जोड़ दिया है।

भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र की सार्वभौमिकता की घोषणा करते हुए लिखा था:

"न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।

नासौ योगो न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन् यन्न दृश्यते॥" (नाट्यशास्त्र 1.116)

अर्थात् ऐसा कोई ज्ञान, शिल्प, विद्या, कला, योग या कर्म नहीं है जो इस नाट्य में दिखाई न देता हो।

उनके निबंधों में यह तर्क प्रमुखता से उभरता है कि नाट्यशास्त्र केवल एक प्राचीन नियमावली नहीं है, बल्कि यह प्रदर्शन-कला (रंगमंच, नृत्य, और सिनेमा) का एक सार्वभौमिक व्याकरण है [14]। उन्होंने आधुनिक नाटकों की समीक्षा करते हुए यह रेखांकित किया कि किस प्रकार पश्चिमी 'यथार्थवादी रंगमंच' की सीमाएं वहां समाप्त हो जाती हैं, जहाँ भारतीय 'रस-सिद्धांत' और 'आंगिक अभिनय' की अनंत संभावनाएं प्रारंभ होती हैं [15]।

इसके साथ ही, काव्यशास्त्र पर लिखे गए उनके निबंधों में 'नव-साहित्यशास्त्र' की स्थापना पर बल दिया गया है। डॉ. त्रिपाठी का मानना है कि आधुनिक संस्कृत कविताओं, जिनमें महानगरीय संत्रास, औद्योगिक प्रदूषण और मानवीय अलगाव का चित्रण है, की समीक्षा के लिए आचार्य मम्मट या विश्वनाथ के प्राचीन मानदंड पर्याप्त नहीं हैं [16]। इसके लिए उन्होंने अपने निबंधों में 'अभिनव रस' और 'आधुनिक बिंब-विधान' जैसे नए समीक्षात्मक प्रतिमानों की पुनर्रचना की है।

5. सामाजिक-सांस्कृतिक यथार्थ और हाशिए के समाज का पुनराख्यान

साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है, परंतु डॉ. त्रिपाठी के निबंध इस दर्पण में उन छवियों को भी दिखाते हैं जिन्हें प्रायः अनदेखा कर दिया जाता है। उनके निबंध-साहित्य की एक अत्यंत सशक्त विशेषता 'सामाजिक यथार्थवाद' का समावेश है [17]। संस्कृत निबंधों में प्रायः राजाओं, देवताओं या उच्च वर्ग के जीवन का चित्रण ही प्रधान रहा है, किंतु डॉ. त्रिपाठी ने अपनी निबंध-कला का केंद्र 'आम आदमी' को बनाया है। नीतिशतक का यह श्लोक आधुनिक यथार्थ को भली-भांति उद्घाटित करता है:

"बुभुक्षितः किं न करोति पापं, क्षीणा नरा निष्करुणा भवन्ति।"

अर्थात् भूखा मनुष्य कौन सा पाप नहीं कर सकता? और साधनहीन मनुष्य निष्ठुर हो जाते हैं।

उनके लेखों में ग्रामीण भारत की पीड़ा, कृषकों का संघर्ष, और आर्थिक विषमताओं का अत्यंत तीक्ष्ण और मार्मिक विश्लेषण मिलता है [18]। जब वे संस्कृत निबंध लिखते हैं, तो वे समाज के हाशिए पर खड़े व्यक्ति, जैसे शोषित मजदूर, उपेक्षित वर्ग और सत्ता के तंत्र में पिसते हुए आम नागरिक, की आवाज़ को मुख्यधारा में लाते हैं [19]। वे प्राचीन ग्रंथों, जैसे शूद्रक के 'मृच्छकटिकम्' या दंडी के 'दशकुमारचरितम्', पर लिखे गए अपने निबंधों में यह रेखांकित करते हैं कि संस्कृत साहित्य में

© Copyright @ Authors

ISSN: 2347-8705
Peer Reviewed & Refereed Journal (IF: 5.8)
Journal Website www.literaryjournal.org

यथार्थवाद और जन-सामान्य का चित्रण कोई नई बात नहीं है, बस मध्यकाल की दरबारी संस्कृति में इसे भुला दिया गया था, जिसे अब आधुनिक काल में पुनः स्थापित करने की आवश्यकता है [20]।

6. स्त्री-विमर्श: परंपरा में नारी की स्थिति का वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन

आधुनिक साहित्य-समीक्षा में 'स्त्री-विमर्श' (नारीवाद) एक अत्यंत महत्वपूर्ण और ज्वलंत आयाम है। डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी ने अपने निबंधों में संस्कृत साहित्य में स्त्री की स्थिति का अत्यंत संतुलित, ऐतिहासिक और प्रगतिशील पुनर्मूल्यांकन किया है [21]। उन्होंने उन स्थापित पश्चिमी पूर्वाग्रहों का पुरजोर खंडन किया है जो यह मानते हैं कि संस्कृत साहित्य पूर्णतः पितृसत्तात्मक है और इसमें स्त्रियों को केवल दोयम दर्जे का स्थान दिया गया है। आचार्य भवभूति ने 'उत्तररामचरितम्' में स्त्री-पुरुष समानता का जो महान उद्घोष किया था, वह डॉ. त्रिपाठी के निबंधों का आधार बनता है:

"गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः।" (उत्तररामचरितम् 4.11)

अर्थात् गुणी जनों में उनके गुण ही पूजा (सम्मान) के योग्य होते हैं, न कि उनका लिंग (स्त्री/पुरुष) और न ही उनकी आयु।

अपने शोधपरक निबंधों में डॉ. त्रिपाठी गार्गी, मैत्रेयी और उभयभारती जैसी विदुषियों के शास्त्रार्थों का संदर्भ देते हुए यह सिद्ध करते हैं कि प्राचीन भारत में बौद्धिक विमर्शों में स्त्रियों की समान और सशक्त भागीदारी थी [22]। वे कालिदास और भवभूति की नायिकाओं, शकुंतला, सीता और मालविका, के चरित्रों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करते हुए यह स्पष्ट करते हैं कि ये नायिकाएं केवल मूक दर्शक नहीं हैं, बल्कि अन्याय के विरुद्ध अपनी आवाज़ उठाने वाली और अपने आत्मसम्मान के लिए संघर्ष करने वाली सशक्त स्त्रियां हैं [23]। इसके विपरीत, स्मृति-ग्रंथों में जहाँ कहीं भी स्त्रियों के अधिकारों का हनन दिखाई देता है, डॉ. त्रिपाठी अपने निबंधों में उसकी तीखी और तार्किक आलोचना करने से भी पीछे नहीं हटते। यही वह बिंदु है जहाँ वे परंपरा के अंधानुकरण के बजाय उसकी 'समीक्षात्मक पुनर्रचना' करते हैं।

7. निबंध-शिल्प: भाषा, शैली और संप्रेषणीयता

विषयवस्तु की वैचारिक गंभीरता के साथ-साथ डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी के निबंधों का शिल्प और उनकी भाषा-शैली भी अत्यंत विशिष्ट है। प्राचीन संस्कृत गद्य (विशेषकर बाणभट्ट के पश्चात) प्रायः लंबे समासों (समस्त-पदों), श्लेष और जटिल अलंकारों से बोझिल रहता था, जिसके कारण वह सामान्य पाठक की पहुँच से दूर हो गया था [24]। डॉ. त्रिपाठी ने अपने निबंधों में इस जटिलता को तोड़कर 'सरल, प्रवाहमयी और पारदर्शी संस्कृत गद्य' की नींव रखी।

उनकी भाषा-शैली में आचार्य विश्वनाथ द्वारा वर्णित 'प्रसाद गुण' की पूर्ण व्याप्ति है:

"चित्तं व्याप्नोति यः क्षिप्रं शुष्केन्धनमिवानलः।

स प्रसादः समस्तेषु रसेषु रचनासु च॥" (साहित्यदर्पण 8.7)

अर्थात् जो गुण सूखे ईंधन में अग्नि के समान चित्त में शीघ्र व्याप्त हो जाता है, वह प्रसाद गुण है, और यह सभी रसों एवं रचनाओं में श्रेष्ठ माना जाता है।

उनकी भाषा में आलंकारिकता का कृत्रिम बोझ नहीं है, बल्कि उसमें एक आधुनिक गद्यकार की स्पष्टता और तार्किकता है। वे छोटे-छोटे वाक्यों, सटीक पारिभाषिक शब्दावली और मुहावरेदार भाषा का प्रयोग करते हैं, जिससे उनके निबंध नीरस अकादमिक आलेख न रहकर अत्यंत रोचक और संप्रेषणीय बन जाते हैं। उन्होंने संस्कृत निबंधों में 'व्यंग्य' और 'हास्य' का भी अत्यंत शिष्ट और मार्मिक प्रयोग किया है, जो समाज की विद्रूपताओं पर सीधा प्रहार करता है। शिल्पगत स्तर पर उनके निबंध

© Copyright @ Authors

ISSN: 2347-8705
Peer Reviewed & Refereed Journal (IF: 5.8)
Journal Website www.literaryjournal.org

प्रस्तावना, तार्किक विस्तार, उदाहरणों के माध्यम से पुष्टीकरण और एक स्पष्ट निष्कर्ष के सुव्यवस्थित ढांचे पर आधारित होते हैं, जो आधुनिक शोध-प्रणाली के पूर्णतः अनुकूल है।

8. निष्कर्ष

निष्कर्षतः, यह अत्यंत दृढ़तापूर्वक कहा जा सकता है कि डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी का निबंध-साहित्य आधुनिक संस्कृत वाङ्मय की एक अमूल्य और ऐतिहासिक निधि है। उन्होंने संस्कृत निबंध-विधा को मात्र भाषा-ज्ञान के प्रदर्शन या शब्दाडंबर का साधन नहीं बनने दिया, अपितु उसे विचार-मंथन, सामाजिक-समीक्षा और सांस्कृतिक-पुनर्रचना का एक अत्यंत शक्तिशाली अस्त्र बनाया। राजशेखर ने 'काव्यमीमांसा' में जिस प्रज्ञा (बुद्धि) की प्रशंसा की है, वह डॉ. त्रिपाठी पर पूर्णतः चरितार्थ होती है:

"प्रज्ञा नव-नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा मता।"

अर्थात् जो बुद्धि नित्य नए-नए विचारों को जन्म देती है, वही वास्तविक प्रतिभा है।

उनके निबंधों में परंपरा एक ठहरे हुए और सड़े हुए तालाब के समान नहीं है, बल्कि एक बहती हुई नदी के समान है जो निरंतर नई धाराओं (आधुनिक विचारों) को स्वयं में समाहित करती रहती है। नाट्यशास्त्र के आधुनिक प्रयोगों से लेकर नव-साहित्यशास्त्र की स्थापना तक, और 'वाद-परंपरा' की लोकतांत्रिक व्याख्या से लेकर स्त्री-विमर्श की प्रखर प्रस्तुति तक, डॉ. त्रिपाठी के निबंध हर कदम पर एक नए युग का सूत्रपात करते हैं। उन्होंने यह सिद्ध कर दिया है कि संस्कृत किसी अतीत के खंडहर में गूंजती हुई प्रतिध्वनि नहीं है, बल्कि यह आज के विश्व-मंच पर एक नए आत्मविश्वास के साथ खड़ी हुई अत्यंत जीवंत और समकालीन भाषा है। संस्कृत निबंध-साहित्य में उनके द्वारा की गई यह 'परंपरा की पुनर्रचना' आगामी अनेक पीढ़ियों के रचनाकारों और शोधार्थियों के लिए एक सुदृढ़ वैचारिक प्रकाश-स्तंभ के रूप में सदैव उनका मार्गदर्शन करती रहेगी।

संदर्भ

1. र. मिश्र, संस्कृत निबंध का उद्भव और विकास. वाराणसी: चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, 2012, पृष्ठ 12-18.
2. भ. शास्त्री, आधुनिक संस्कृत साहित्य का इतिहास. नई दिल्ली: राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, 2005, पृष्ठ 145-152.
3. कुमार, "आधुनिक संस्कृत निबंध और सामाजिक चेतना," साहित्य विमर्श, खंड 8, अंक 2, पृष्ठ 34-40, 2018.
4. श. तिवारी, संस्कृत साहित्य में परंपरा और आधुनिकता. जयपुर: राजस्थान ग्रंथागार, 2015, पृष्ठ 88-95.
5. रा. व. त्रिपाठी, संस्कृत साहित्य का अभिनव इतिहास. वाराणसी: विश्वविद्यालय प्रकाशन, 2007, पृष्ठ 250-258.
6. स. द्विवेदी, "डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी के निबंधों में वैचारिक नवोन्मेष," प्राच्य विद्या अनुसंधान, खंड 12, अंक 1, पृष्ठ 22-29, 2021.
7. प. शर्मा, संस्कृत गद्य साहित्य की आधुनिक प्रवृत्तियां. दिल्ली: ईस्टर्न बुक लिंकर्स, 2010, पृष्ठ 112-118.
8. रा. व. त्रिपाठी, नया साहित्य नया साहित्यशास्त्र. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 2012, पृष्ठ 45-52.

© Copyright @ Authors

ISSN: 2347-8705
Peer Reviewed & Refereed Journal (IF: 5.8)
Journal Website www.literaryjournal.org

9. म. झा, शास्त्रार्थ की परंपरा और आधुनिक संदर्भ. प्रयागराज: अक्षयवट प्रकाशन, 2019, पृष्ठ 65-72.
10. रा. व. त्रिपाठी, वाद की परंपरा: भारतीय बौद्धिक विमर्श. नई दिल्ली: राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, 2021, पृष्ठ 15-25.
11. व. पांडेय, "संस्कृत विमर्श में संवाद की प्रविधि," शोध-प्रभा, खंड 5, अंक 3, पृष्ठ 77-84, 2020.
12. द. भार्गव, आधुनिक भारतीय चिंतन और संस्कृत साहित्य. भोपाल: मध्य प्रदेश संस्कृत अकादमी, 2016, पृष्ठ 130-136.
13. प्र. शुक्ल, "आचार्य त्रिपाठी का नाट्यशास्त्रीय चिंतन," नाट्य विमर्श, खंड 4, अंक 1, पृष्ठ 40-48, 2017.
14. रा. व. त्रिपाठी, नाट्यशास्त्र विश्वकोश, खंड 1. नई दिल्ली: न्यू भारतीय बुक कॉर्पोरेशन, 1999, पृष्ठ 20-28.
15. सिंह, भारतीय रंगमंच: परंपरा और प्रयोग. वाराणसी: कला प्रकाशन, 2014, पृष्ठ 95-102.
16. य. शास्त्री, "आधुनिक संस्कृत आलोचना के नए प्रतिमान," विश्व संस्कृतम्, खंड 20, अंक 2, पृष्ठ 110-117, 2022.
17. रा. व. त्रिपाठी, आधुनिक संस्कृत साहित्य: संदर्भ सूची. नई दिल्ली: राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, 2011, प्रस्तावना पृष्ठ 8-14.
18. सु. झा, "आधुनिक संस्कृत निबंधों में ग्रामीण यथार्थ," समाज और साहित्य, खंड 9, अंक 4, पृष्ठ 55-62, 2023.
19. नाथ, संस्कृत साहित्य में हाशिए का समाज. नई दिल्ली: साहित्य अकादमी, 2018, पृष्ठ 140-148.
20. रा. व. त्रिपाठी, संस्कृत काव्यशास्त्र और काव्य परंपरा. दिल्ली: प्रतिभा प्रकाशन, 2004, पृष्ठ 175-182.
21. न. उपाध्याय, "संस्कृत विमर्श में स्त्री-अधिकार की अवधारणा," स्त्री और शास्त्र, खंड 3, अंक 2, पृष्ठ 28-35, 2019.
22. रा. व. त्रिपाठी, बहस में स्त्री. नई दिल्ली: डी. के. प्रिंटवर्ल्ड, 2015, पृष्ठ 40-50.
23. ल. शर्मा, प्राचीन साहित्य में स्त्री-चेतना. जयपुर: पब्लिकेशन स्कीम, 2020, पृष्ठ 210-218.
24. र. मिश्र, आधुनिक संस्कृत गद्य-शिल्प. वाराणसी: संपूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय, 2013, पृष्ठ 85-92.

© Copyright @ Authors